सकारात्मक और
प्रेरक लघुकथाएं
बालकृष्ण गुप्ता 'गुरु'

# सकारात्मक और प्रेरक लघुकथाएं

बालकृष्ण गुप्ता 'गुरु'

# पाठकों से...

लघुकथा शब्द ही अपने आप में बड़ा किफायती है। लघु और कथा, इन दो शब्दों के लिए एक शब्द। इसी तरह लघुकथा भी अपनी रचना में शब्दों की किफायत की मांग करती है। लघुकथा अपने जन्म से ही, आत्मा से इतनी सुंदर होती है कि इसे कृत्रिम गहनों की आवश्यकता ही नहीं होती। क्या किसी छरहरे तन की सुंदर युवती को अतिरिक्त चर्बी की जरूरत होती है?

मैं लघुकथा के बारे में जैसा सोचता हूं,
वैसा ही प्रयास भी करता हूं कि रचना
छोटी हो और साथ ही स्पष्ट भी,
ताकि पाठक और संपादक को दिमाग
न खपाना पड़े। कोई संदेश या सुझाव
भी मिले तो सोने पर सुहागा। हालांकि
यह सप्रयास नहीं होता, क्योंकि
लघुकथाकार अपनी रचना में
सृजनात्मक पक्ष ही रखता है। परंतु
कुछ लघुकथाओं में सकारात्मकता,
प्रेरणा, उत्साह जैसे भाव सहज रूप से
आ जाते हैं।

इस संग्रह की लघुकथाओं को इसी पैमाने पर चुना गया है। 'गुरु-ज्ञान; आईना दिखातीं लघुकथाएं' के बाद अपने दूसरे संग्रह 'सकारात्मक और प्रेरक लघुकथाएं' को समयानुकूल ई-बुक के रूप में प्रकाशित करते हुए प्रसन्नता हो रही है। इसका उद्देश्य यही है कि ये चुनिंदा लघुकथाएं अधिक से अधिक पाठकों तक पहुंचें और पाठकों की प्रतिक्रियाएं व सुझाव मिलें। हर तरह की टिप्पणियों का स्वागत ही रहेगा। कृपया मुझे

ggbalkrishna@gmail.com पर
अपनी राय से अवश्य अवगत कराएं।

**- बालकृष्ण गुप्ता 'गुरु'**

# जिसका जूता...

एक राजनीतिक पार्टी के झंडे के रंग की जींस और बनियान पहने युवक ने रिक्शेवाले से पूछा- “नया बसस्टैंड चलोगे?”
“नेताजी, पचास रुपये लगेंगे।”
“मुझे नेताजी मानते हो और बेवकूफ भी मुझे ही बना रहे हो। पच्चीस रुपये दूंगा।”
“नेताजी, धूप तेज है, आपने भी तो काला चश्मा लगाया और कैप पहनी है। मैं तो वाजिब ही मांग रहा हूं।”

युवक ने तुरंत अपने बैग से पार्टी के चुनाव चिह्न वाली कैप निकालकर उसे पहना दी और उसका ही गमछा उसी के चेहरे पर लपेटते हुए कहा, “लो, गरीब हो इसका मैंने ध्यान रख लिया।” अब चलो कहते हुए वह रिक्शे पर सवार हो गया।

गंतव्य पर रिक्शे से उतरकर जैसे ही वह जाने लगा, रिक्शेवाले ने याद दिलाया-

“नेताजी पैसे?’

“पच्चीस की जगह तीस रुपये की टोपी तुम्हें पहनाई तो है।” युवा नेता के होंठों पर कुटिल मुस्कान थी।

“लो तुम्हारी तीस रुपये की टोपी। पच्चीस रुपये रिक्शे-भाड़े के और पच्चीस रुपये तुम्हारे जबरदस्ती के प्रचार के, टोटल पचास रुपये निकालो।” रिक्शेवाले ने बेरुखी से कहा।

युवा नेता ने एक पल उसके डील-डौल और मजबूत शरीर को देखा और खिसियानी हंसी के साथ पचास का नोट देते हुए कहा, “लो पहलवान, अब तो खुश!”

# चमक

“तुम विधवा हो, मांग भरती हो। पर
तुम्हारी मांग चमकीली नजर नहीं आती?”
परिचित महिला ने पूछा।
“मैं शहीद की पत्नी हूं। शहीद मरता नहीं,
अमर रहता है। जिस स्थान पर मेरे पति
गोलियां लगने से शहीद हुए थे, उस स्थान
की मिट्‌टी खुद लेकर आई हूं, मांग भरने।
सरहद की मिट्‌टी शहीद के खून को
आत्मसात कर लेती है।”

दूसरी औरत उसकी मांग को कुछ देर तक ध्यान से देखती रही फिर उसके मुंह से निकला, “हां, तुम्हारी मांग की तेज चमक से मेरी आंखें चौंधिया गई थीं।”

# गिलहरी प्रयास

‘हम मकान नहीं घर बनाते हैं’। इस खूबसूरत विज्ञापन की शर्तों को पढ़कर रामभरोसे को भरोसा हो गया कि उन शर्तों को पूरा करते ही उसका भी घर हो जाएगा। पर बिल्डर ने बताया कि कुछ छोटी-छोटी शर्तें भी हैं। तथाकथित छोटी-छोटी शर्तों को सुनने के बाद रामभरोसे का भरोसा ही उठ गया।

वह उदास चला आ रहा था कि उसकी नजर एक तीन-चार साल की बच्ची पर पड़ी, जो

मिट्टी के ढेले उठा-उठाकर अपनी मां को देती जा रही थी। मां गारा मता रही थी और मिट्टी के लोंदे बना-बनाकर, पास ही मिट्टी की दीवार उठा रहे अपने पति को देती जा रही थी। पति मिट्टी के लोंदों को जमा-जमाकर दीवार को जन्म दे रहा था। रामभरोसे को रामचरितमानस में सेतुबंध के समय एक नन्ही गिलहरी के योगदान का ध्यान आया और खुशी से उसके मुंह से ज़ोर से निकला, “गिलहरी!” आवाज सुन तीनों का ध्यान उस ओर गया। रामभरोसे को लगा कि उसकी आवाज ने उन तीनों का

ध्यान ही भंग कर दिया। वह सिर झुकाकर चलते-चलते पीछे मुड़-मुड़कर गिलहरी रूपी बच्ची को देखता रहा। अपने किराए के मकान वाली गली के मोड़ पर घुसते ही वह उमंग से मुस्कराने लगे।

# दूसरा लड्डू

चौरस्ते पर गणेश उत्सव के पंडाल में एक युवक प्रसाद वितरण कर रहा था। वहां विश्वविद्यालय, मंदिर, और खेल मैदान की ओर से आने वाली राहें और आम सड़क मिलती थीं। विश्वविद्यालय की ओर से आने वाले युवक-युवतियों को प्रसाद में पूरा एक-एक लड्डू देता, पर खेल मैदान से आ रहे युवक-युवतियों को आधा-आधा लड्डू और मंदिर की ओर से आने वाले बुजुर्गों को एक-चौथाई लड्डू प्रसाद के रूप में देता था।

अन्य लोगों को चेहरे देखकर, हिसाब से प्रसाद वितरित कर रहा था।
एक बच्चा बार-बार प्रसाद लेने आता और युवक की डांट खाकर दूर हट जाता। अंत में युवक ने बच्चे के गाल पर एक चांटा जमाया और लड्डू थमा दिया। कुछ देर बाद बच्चा फिर से प्रसाद लेने के लिए आने लगा।
युवक गुर्राया, “अब क्या चाहिए?”
बच्चे ने दूसरा गाल उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा, “एक लड्डू और।”

युवक ने अब की बार अपनी पूरी ताकत से बच्चे के गाल पर तमाचा जड़ दिया। बच्चा गिर पड़ा। बच्चे के उठने पर युवक ने पूछा, “दूसरा लड्डू किसके लिए?”

बच्चे ने गाल सहलाते हुए जवाब दिया, “दोनों लड्डू, दो दिन से भूखी मेरी माँ के लिए।”

युवक अब की बार दो लड्डू देते हुए कहा, “दूसरा लड्डू गणेश जी की ओर से।”

इस बार बच्चे को मार नहीं पड़ी थी, फिर भी उसकी आंखें भर आईं, और युवक की भी।

# उम्मीद

“आज ‘सांप’ आ सकता है, सोनू को दूध मत देना।” सुकालू किसान अपनी पत्नी से कह रहा था कि उसकी नजर दरवाजे पर मुस्कराते मोटे साहूकार पर पड़ी। मजबूरी में आदर दिखाते आसन लगाया। ‘सांप’ को बैठाया। ओट में खड़ी पत्नी से जोर से कहा, “साहूकार जी के लिए खालिस दूध की चाय बनाना।”

“खालिस दूध की स्वादिष्ट चाय तुम्हारे यहां ही मिलती है। मेरे कर्जदारों में एक

तुम्हारे पास ही गाय है।” साहूकार
मुस्कराते हुए बोला।
“अगली बार से मैं पूरे सूद के साथ मूल की
किस्त भी देता जाऊंगा। जैसे-जैसे मूल
घटता जाएगा, आपकी चाय में पानी बढ़ता
जाएगा। अंतिम किस्त देने के दिन
खालिस पानी पेश करूंगा।” सुकालू ने भी
मुस्कराते हुए कहा। “उसके बाद कोशिश
करूंगा कि एक गाय और खरीदूं। आप कभी
भूले-भटके आएं तो चाय पिला सकूं।
अतिथि वाली... मजबूरी वाली नहीं।”

“उम्मीद है, पानी मिलाने की नौबत नहीं आएगी, तुम्हारे यहां खालिस दूध की चाय मिलती रहेगी।” साहूकार ने बेशरमी से दांत दिखाए।

“उम्मीद है, अगली फसल के बाद मेरे पास दूसरी गाय होगी।” सुकालू के शब्दों में विश्वास था।

# सकारात्मकता

इंटरव्यू के लिए आए युवा बुलावे के इंतजार में बैठे थे। दो-दो, तीन-तीन के समूह में चर्चाएं हो रही थीं। एक अपेक्षाकृत सम्पन्न घर के उम्मीदवार ने गांव से आए, किसान के बेटे से आश्चर्य से कहा- "मुझे तो यकीन नहीं होता, इतनी धूप में तुम बस स्टैंड से तीन किलोमीटर पैदल चलकर यहां तक आए हो!"

किसान-पुत्र ने सहजता से कहा, "इसके एक नहीं तीन कारण हैं। मैं शहर में सवा

घंटे पहले ही पहुंच गया था। पैदल चलने से स्वास्थ्य अच्छा रहता है, ऐसा लोग मानते हैं, पर मुझे तो पैदल चलने की आदत है। तीसरा कारण, घर से खाना लेकर नहीं चला था। इंटरव्यू के बाद कुछ न कुछ खाना भी जरूर होगा। पैदल चलकर ऑटो के चालीस रुपए बचाए हैं, सो मसाला डोसा खाऊंगा।”

# चर्चा का विषय

वह गांव की लड़की थी। स्कूली बोर्ड और कॉलेज की परीक्षाओं में हमेशा अच्छे अंक लाती। लेकिन गांव में कभी कोई चर्चा नहीं हुई।
कॉलेज पूरा कर लेने के बाद भी उसकी शादी नहीं हुई थी। गांववालों की नजर में वह 'बूढ़ी' हो रही थी। शादी न होने के कारणों को लेकर कानाफूसी होती, लोग चटखारे ले-लेकर चर्चा करते।

एक दिन खबर आई कि उसने अपनी पसंद के लड़के से शादी कर ली है। अब चर्चाओं की संख्या बढ़ गई और तीव्रता भी। लोग उसके पति को लेकर अनुमान लगाने लगे, कई तो भावी जीवन को लेकर भविष्यवाणियां भी करने लगे।

कुछ दिनों बाद वह अपने पति के साथ गांव आई। उसे पूरा गांव घुमाया। बालिकाओं के विद्‌यालय भी ले गई। गांव में कानाफूसी होती रही- “आ गई, आ गई!” अगले दिन वे चले गए।

अब वे हर रविवार को आने लगे। लड़की बच्चों को अलग-अलग समय में नि:शुल्क पढ़ाने लगी। उसके डॉक्टर पति भी गरीबों की बहुतायत वाले गांव में मुफ्त इलाज करने लगे।

अब गांव में उन्हें लेकर कोई कानाफूसी, कोई चर्चा नहीं होती।

# डबल भगवान

“मां जी, खून का इंतजाम अभी तक नहीं हुआ है। अगर जल्दी न हुआ, तो मरीज की जान जा सकती है।” डॉक्टर की आवाज में खीझ और निराशा थी।
“बेटा... कोशिश करके हार चुकी हूं...।”
कहते-कहते बुढ़िया रोने लगी।
अचानक उसे ध्यान आया- जब से मरीज भर्ती हुआ है, जाने-अनजाने वह उसकी मां से मां जी-मां जी कहकर ही तो बात कर रहा है। वह भी उसे डॉक्टर साहब कम, बेटा

ही ज्यादा बोल रही है। उसे यह भी ध्यान आया कि उसका जो रक्त समूह है, वही मरीज का भी है।
उसने वृद्धा के आंसू पोंछते हुए कहा, "मेरा भाई नहीं मरेगा, मैं अपना खून दूंगा। आखिर हम दोनों का खून ऊपरवाले ने एक जैसा ही बनाया है।"
और वृद्धा मां सोच रही थी- 'डॉक्टर, भगवान का रूप होता है, फिर अपना ही खून देकर मरीज की जान बचाने वाला यह डॉक्टर क्या कहलाएगा, डबल भगवान!'
और कहीं पर ऊपरवाला मुस्करा रहा था।

# ममता जिसका नाम

मेरे घर का एक हिस्सा बन रहा था।
ठेकेदार के मजदूरों में एक बुजुर्ग महिला भी थी। वह बाकी सबसे उम्र में अधिक लगती थी, पर काम भी सबसे ज्यादा करती थी।
एक दिन वह नजर नहीं आई। शाम को ऑफिस से घर लौटते वक्त देखा- वह मंदिर के सामने बैठने वाले भिखारियों को खाना खिला रही थी। मेरे पूछने पर बताया- “आज मेरे बेटों का जन्मदिन है।”

“बेटों का...!’
“हां, मेरे जुड़वां बेटे हैं। एक महिला और बाल विकास विभाग में अधिकारी है और दूसरा राजस्व विभाग में।”
“फिर भी आप...!” मेरा आश्चर्य बढ़ता ही जा रहा था।
“मां को कौन रखे, इस बात को लेकर दोनों के बीच विवाद होता था। दोनों एक-दूसरे पर जिम्मेदारी डालते थे। अंत में निर्णय हुआ कि फिलहाल मां के हाथ-पैर चल रहे हैं, इसलिए उसे खुद कमाकर खाने दिया जाए। मुझे भी यही सही लगता है। मेरा

अनुभव है कि मेहनत से कमाई रोटी बेटों की रोटी से ज्यादा स्वादिष्ट होती है।”

मुझे उस वृद्‍धा का नाम नहीं मालूम। मैंने पूछा भी नहीं। मुझसे बात करने के बाद वह फिर से भिखारियों को स्नेह से परोसने लगी। मैं कुछ देर उसे देखता रहा, फिर अचानक मुझे लगा, उसका नाम ‘ममता’ ही होगा।

# ...और खिलखिला उठा चांद

व्रत माही का था, पर सारा घर परेशान था। उसके व्रत के कारण नहीं, उसके लिए परेशान था। चांद बादलों की ओट में छुपा हुआ था। दर्शन देने का नाम ही नहीं ले रहा था। समय बढ़ता जा रहा था।
सात साल का गगन बार-बार आंगन में आता। हर बार मां को टकटकी लगाए आसमान की ओर ही देखता पाता। आखिर

उससे रहा नहीं गया और वह आकाश की ओर मुंह करके जोर से बोल पड़ा, “मामा जी, अब मम्मी को परेशान मत करो, चेहरा दिखा भी दो।” उसकी बात सुनकर माही के होंठों पर मुस्कान फैल गई।
पवन भी अपनी पत्नी के भूखे बैठे रहने को लेकर चिंतित था। उसने कहा, “माही, एक काम करो। छत पर जाओ और मेरी ओर मुंह करके खड़ी हो जाओ।”
माही को थोड़ा अजीब तो लगा, पर उसने वैसा ही किया। उसने नीचे आंगन में झांका, तो देखा कि पवन हाथ में चलनी

लिए खड़ा है। वह चलनी की ओट से उसे देखने लगा। माही को हंसी आ गई। पवन बोला, “एक रात में दो-दो चांद हैं। एक मेरे सामने खिलखिला रहा है, एक बादलों की ओट में छुपा शरमा रहा है। मैंने अपना चांद देख लिया, मतलब तुमने भी देख लिया। चलो, अब नीचे आ जाओ और व्रत खोलो।”

माही कुछ कहती, इससे पहले ही बादल छंट गए और चांद चमकने लगा। शायद पवन के प्यार और परवाह जताने के तरीके

को देखकर वह भी खिलखिलाने पर
मजबूर हो उठा था।

# सही बंटवारा

सरोजिनी के दो बेटे थे। दोनों की उम्र में एक साल का ही अंतर था और कद-काठी लगभग समान थी। दोनों को नाश्ते में आटा ब्रेड खाना बहुत भाता था, इसलिए एक दिन पहले, शाम को ब्रेड का पैकेट लाने की जिम्मेदारी उन्हीं दोनों पर थी। शुरुआत में सरोजिनी ब्रेड स्लाइस का बराबर बंटवारा करती, यानी 15 में से प्रत्येक को साढ़े सात ब्रेड मिलतीं। चूंकि दुकान से पैकेट लाने में कोई फायदा नहीं

था, ब्रेड बराबर बंटनी थी, इसलिए उनमें विवाद होता रहता। बड़ा भाई कहता कि छोटे को काम करना चाहिए, जबकि छोटा कहता कि उसे बार-बार दौड़ाना नहीं चाहिए।

रोज-रोज के इस विवाद से तंग आकर सरोजिनी ने नियम बना दिया कि जो पैकेट लाएगा उसे आठ ब्रेड मिलेंगी और दूसरे को सात। अब दोनों भाई दुकान जाने को लेकर लड़ते। बड़ा कहता कि वह ज्यादा जिम्मेदार है इसलिए काम उसे ही करना चाहिए, जबकि छोटा कहता कि

ब्रेड-बिस्कुट जैसी छोटी-मोटी चीजें लाने की जिम्मेदारी छोटों की होती है।

सरोजिनी अब भी इस चिकचिक से तंग थी। उसने इस बात की चर्चा अपनी सहेली से की, तो उसने कहा, “तुमने बंटवारा ही गलत किया है। बंटवारा फायदे का नहीं, जिम्मेदारियों का होना चाहिए। फायदे में ज्यादा हिस्सा पाने और ज्यादा फायदे की मंशा से ज्यादा जिम्मेदारी लेने की चाह परिवार के साथ-साथ देश के लिए भी घातक हो रही है। अधिकांश लोगों को बड़े पद की चाह बड़ी जिम्मेदारियां निभाने के

लिए नहीं, बल्कि ज्यादा कमाई के लिए होती है।"

बात सरोजिनी की समझ में आ गई। उसने तय कर दिया कि एक दिन एक भाई पैकेट लाएगा और दूसरे दिन दूसरा। और नाश्ते में प्रत्येक को पहले की तरह साढ़े सात ब्रेड मिलेंगी। अब न दुकान जाने को लेकर विवाद होता है, न ब्रेड स्लाइस की संख्या को लेकर।

# बोलता रक्त

चपरासी शायद कुछ कहना चाहता था कि उसकी नजर बदहवास दौड़ते, अंदर प्रवेश करते युवक पर पड़ी और वह रुक गया।
- “बेचारा घर से दौड़ते हुए आ रहा है।”
- “शायद सो गया था।”
- “दूध नहीं पिया है इसलिए हांफ रहा है।”
दिख रहा है दौड़ते आ रहा हूं। हाँ, सोया हुआ था। दूध तो मिला पर पीने का वक्त नहीं था- वह जवाब देना चाहता था पर सही वक्त नहीं था। वह चपरासी के पास पहुंचा

और बताया कि वह भी इंटरव्यू देने आया है। चपरासी अंदर गया। बाहर आया। वह मे आई कम इन सर, कहकर अंदर गया। अभिवादन के बाद बैठने का इशारा पाते ही खाली कुर्सी पर धीरे से बैठ गया।

चेयरपर्सन ने पूछा, “यंग मैन हम जानना चाहते हैं कि व्यक्ति तो इंटरव्यू के लिए समय से पहले ही पहुंच जाता है, तुम अंत में विलंब से कैसे पहुंचे?”

“महोदय, मैं इंटरव्यू के लिए निकलने ही वाला था कि ब्रेन स्पेशलिस्ट डॉ. मेहता का फोन आया कि अजय तुरंत अस्पताल

आओ, तुम्हारे रक्त ग्रुप की इमरजेंसी आवश्यकता है।”

“अगर तुम भी समय से पहले घर से इंटरव्यू के लिए औरों की तरह निकल गए होते तो…?”

“मैं अस्पताल के लिए मुड़ जाता।”

“तुमने रक्तदान किया, अच्छा किया पर हम लोग निकल गए होते तो? तुम्हारे हाथ से नौकरी की संभावना भी निकल जाती। वैसे तुम्हें देखकर लगता है कि तुम एक अति सामान्य घर के युवक हो, तुम्हें

नौकरी की सख्त आवश्यकता है, ऐसे में....?”
“महोदय, मजदूर का पुत्र हूं। मेरे सामने लंबी जिंदगी है। पिताजी के साथ मजूरी में लग जाऊंगा। पर मेरे नहीं पहुंचने पर उस युवक की जिंदगी निकल जाती।”
“माय सन, हमने तुम्हारे सर्टिफिकेट देख लिए हैं, परिणाम का इंतजार करना।”
चेयरपर्सन का प्यार भरा संबोधन ‘माय सन’ उसके कानों में गूंजता रहा।

# तुम जीती मैं हारा

मेरा मानना है कि नोक-झोंक की चहचहाहट न हो, तो जीवन काफी हद तक नीरस हो जाता है। जिंदगी को मजेदार बनाने के लिए चिड़िया का चहचहाते रहना जरूरी है, जिसके लिए कुछ करना ही पड़ता है। तो मैं पत्नी से विवाद करता रहता हूं। अक्सर बिना किसी बात के तेज-तेज बात शुरू हो जाती है और वाद-विवाद में बदल जाती है। पत्नी तो दो-चार वाक्य कहकर चुप हो जाती है, परंतु मेरा स्वभाव ऐसा है

कि मैं रह-रहकर कुछ न कुछ कहता रहता हूं। इसलिए विवाद लंबा खिंच जाता है और सुबह की बात में शाम भी हो जाती है।
कुछ समय से मैं गौर कर रहा था कि जिस दिन पत्नी से विवाद होता है, उस दिन रात के खाने में मुझे सब्जी नहीं मिलती। उस समय मुझे दूध-रोटी परोसी जाती है। पहले तो मुझे लगा कि यह विवाद करने की सजा के तौर पर है। फिर मैंने सोचा कि दूध-रोटी तो मुझे पसंद है। अक्सर सुबह के नाश्ते में दूध-रोटी ही खाता हूं। फिर यह सजा तो

कहीं से नहीं है। लेकिन अन्य सदस्यों से अलग खाना मिलना समझ न आया।
एक दिन मैंने पत्नी से पूछ ही लिया-
“जिस दिन सुबह तुमसे विवाद होता है, शाम को खाने में मुझे दूध-रोटी ही क्यों परोसती हो?”
पत्नी मुस्कराई। बोली- “आपको हाइपर टेंशन है न! वाद-विवाद से आपका ब्लड प्रेशर बढ़ जाता है। शायद बढ़े ब्लड प्रेशर की वजह से आप ज्यादा बहस करते हैं। इसलिए खाने में सब्जी की जगह दूध देती हूं। सब्जी में नमक होता है न। इसलिए

अपने हिस्से का भी दूध आपको दे देती हूं
और आपके हिस्से की सब्जी खुद खा लेती
हूं।”
मैंने कहा- “तुम जीती मैं हारा!”

# नारी तुम श्रद्धा हो

सवेरे पत्नी श्रद्धा के सहयोग के इरादे से अभिषेक ने गैस चूल्हे पर दूध चढ़ा दिया। इसके बाद समय का सदुपयोग करने के लिए अखबार पढ़ने लगा, तो फिर समय का ध्यान ही न रहा। इस बीच दूध उफनकर गिरने ही वाला था कि श्रद्धा ने दौड़कर बचा लिया। पर इस प्रयास में उसकी साड़ी का पल्लू दरवाजे के किनारे में फंसकर थोड़ा फट गया। अभिषेक के मुंह से निकला- "कर दिया न बारह सौ की

साड़ी का सत्यानाश!" श्रद्धा मुस्कराकर बोली- "कोई बात नहीं। मेरी इतनी बड़ी साड़ी में एक छोटा-सा छेद ही तो हुआ है। मैं पहनना थोड़े ही छोड़ दूंगी।"

दोपहर की बात है, शादी की उम्र में पहुंच चुकी बेटी रोटी बनाते-बनाते कहीं खो गई थी। मां ने दौड़कर रोटी को जलने से तो बचा लिया, किंतु अपने हाथ की छोटी उंगली को जलने से न बचा पाई। बेटी बोली- "रोटी तो मैं बना ही रही थी, आपको बीच में आने की क्या जरूरत थी! जब शरीर संभलता नहीं, तो दौड़-भाग क्यों

करती हैं।” श्रद्धा ने उसकी ओर स्नेह से देखा और बस मुस्करा दिया।
शाम को उसने देखा कि युवा पुत्र पैंट को प्रेस करते-करते मोबाइल फोन में व्यस्त हो गया है। इस बार भी उसने दौड़कर पैंट को जलने से तो बचा लिया, पर हड़बड़ाहट में पैर तार से उलझा और प्रेस उसी के पैर पर आ गिरी। बेटे ने झुंझलाते हुए कहा-
“मम्मी, जरूरी बात के समय डिस्टर्ब मत किया करो। आप हड़बड़ी में दौड़ती नहीं, तो आपको चोट भी नहीं लगती।” श्रद्धा के

चेहरे पर पैंट के जलने से बच जाने की राहत थी।
रात को खर्राटे भर रहे पति के बगल में लेटी श्रद्धा सोच रही थी- "हर कोई मुझसे प्यार करता है, तभी तो मेरी इतनी परवाह करता है। पर क्या करूं, मुझसे ही गलती हो जाती है!"

# जिंदगी देने वाली मां

चार बजे के करीब सावित्री घर पहुंची, तो देखा कि ताला खुला हुआ है। वह थोड़ा चौंकी, क्योंकि पति तो अमूमन पांच बजे ऑफिस से लौटते थे। जल्दी से अंदर गई, तो पति आनंद सोफे पर अधलेटे मिले। चेहरे पर तनिक रोष झलक रहा था। सावित्री दरवाज़े से अंदर आई ही थी कि उन्होंने टोक दिया, "इतनी धूप में कहां गायब थीं तुम?'

“यहीं, पास में गई थी।” उसने संक्षिप्त जवाब दिया। पति का चेहरा देखकर वह यह भी नहीं पूछ पाई कि आज जल्दी कैसे वापस आ गए।

आनंद ने जोर से पूछा, “यहीं पास में का क्या मतलब होता है?”

वह धीरे से बोली, “चाइल्ड हॉस्पिटल गई थी।”

पति ने आवेश में कुर्सी से खड़े होते हुए पूछा, “पर क्यों? यही जांच करवाने न कि मां बनने के लिए तुममें क्या कमी है!’

"नहीं," सावित्री ने इस शब्द पर जोर देते हुए कहा, "मुझे मालूम है कि कमी कहां है। मैं वहां हर महीने जाती हूं, अपना खून देने के लिए। बच्चे 'अपना खून' कहलाते हैं। मैं जन्म देने वाली मां तो नहीं बन पाई, पर सोचती हूं कि जरूरतमंद बीमार बच्चों को अपना खून देकर जिंदगी बचाने वाली मां तो बन ही सकती हूं।"

यह कहते हुए उसके चेहरे पर ममत्व उभर आया। पति के चेहरे पर अब गुस्सा नहीं था। वहां भी स्नेह तैर रहा था।

# उल्लंघन

कड़े लॉकडाउन के दिन थे। सुनसान सड़क पर एक दुपहिया सवार तेजी से निकलने की हड़बड़ाहट में था।
“ऐ रुक, कहां भागा जा रहा है?”
बाइक का ब्रेक चरमराया। युवक उतरा और सिपाही की ओर पीठ करके खड़ा हो गया। तेजी से बोला, “सिपाही जी, अपना काम कर लीजिए और मुझे अपने काम के लिए जाने दीजिए। मेरे पास समय नहीं है, गंवाने के लिए।”

“समय नहीं है…?” व्यंग्य से हंसते हुए सिपाही ने युवक की कमर के नीचे दो डंडे जमा दिए। कहा, “मेरे पास भी वक्त नहीं है, जल्दी से बताओ, कहां जा रहे हो?”

“आज 27 तारीख है…”

“तो…? मुझे भी मालूम है,” सिपाही ने उसकी बात काटते हुए कहा।

“मैं अपने हर महीने जन्म की तारीख पर रक्तदान करता हूं। आज थोड़ा लेट हो गया, क्योंकि आज मेरा जन्मदिन भी है। अपने जन्मदिन पर अनाथ आश्रम के बच्चों को भोजन करवाता हूं। वहीं था, कि

डॉक्टर का फोन आ गया, कहने लगे कि जल्दी से आ जाओ, इमरजेंसी है। इसलिए भागा जा रहा हूं।”

सिपाही को अब भी शक था, उसने पूछा, “तुम्हारा रक्त समूह क्या है?”

“ओ निगेटिव... बहुत कम पाया जाता है...” कहते हुए वह तेजी से बाइक की ओर बढ़ा।

पास खड़े थानेदार की आवाज सुनाई दी, “रुक जाइए।” साथ ही उसने सिपाही से कहा, “हाथ जोड़कर युवक से जल्दी से माफी मांगो।”

युवक तब तक बाइक स्टार्ट कर जा चुका था। थानेदार और सिपाही हाथ जोड़े उसे जाते हुए देखते रहे, जब तक वह नजरों से ओझल नहीं हो गया।

# आंख वाले

दुर्घटनाओं के समाचार पढ़कर चंद्रप्रकाश ने सूर्यप्रकाश से पूछा, "तुमने किसी दृष्टिहीन का एक्सीडेंट होते देखा है?"

"नहीं...तो?"

"फिर आंख वालों का ही एक्सीडेंट क्यों होता है?"

# सिलसिला

“आप पहले व्यक्ति हैं, जिसने चार साल में मंत्री जी के खिलाफ गंभीर शिकायत की है।” रिपोर्टर ने सवालिया निगाहों के साथ कहा।

“नहीं, मैं पहला व्यक्ति हूं, जिसने दबंग मंत्री के विरुद्ध गंभीर शिकायत दर्ज कराने की हिम्मत की है। जब कोई व्यक्ति किसी दबंग के खिलाफ शिकायत करने की हिम्मत करता है, तो उसके बाद कई

शिकायतें सामने आने लगती हैं, जो और भी पुरानी होती हैं।”

# अंतर

आजू-बाजू के दो भवनों में ध्वजारोहण हो रहा था। एक में नारे लग रहे थे- 'पंद्रह अगस्त अमर रहे', तो दूसरी जगह से 'स्वतंत्रता दिवस अमर रहे' की जोशीली आवाजें आ रही थीं।
जानकारियों में अंतर के साथ जोश में भी फर्क था। पहला, राजनीतिक दल का मुख्यालय था और दूसरा, विद्यालय।

# मेरी रचना प्रक्रिया

## लघुकथा जगत की महत्वपूर्ण पत्रिका 'लघुकथा कलश' में प्रकाशित बालकृष्ण गुप्ता 'गुरु' का साक्षात्कार

**1. आप अपनी लघुकथा के लिए कथानक का चुनाव कैसे करते हैं?**

लघुकथा हिंदी का ही शब्द है, जिसका अनुवाद कभी-कभी 'शॉर्ट स्टोरी' कर दिया

जाता है। लघुकथा और लघु कहानी दोनों के लिए अंग्रेजी में शॉर्ट स्टोरी लिखे जाने से दोनों एक ही होने का भ्रम उत्पन्न हो जाता है। लघुकथा के लिए लघुकथा का ही कथानक होना चाहिए। इसलिए मैं लघुकथा के लिए कथानक चुनते समय इस सूक्ष्म अंतर को ध्यान में रखता हूं। लघुकथा का कथानक एक ही बिंदु वाला हो। संक्षिप्त समय, अंतराल प्राय: नहीं। एक से अधिक अंतराल (प्राय: दो-तीन) वाले कथानक या कथावस्तु से लघुकहानी ही बनेगी। इसका ध्यान रखने के लिए यह

गौर करता हूं कि लघु और कथा मिलकर ही लघुकथा शब्द बनता है। यानी संक्षिप्तता, कसावट, मितव्ययिता, अंतराल विहीन कथानक चुनने का प्रयास करता हूं।

कथानक या कथावस्तु वास्तव में रचना की आत्मा होती है, इसलिए मिलावट और भ्रम से दूर, शुद्ध कथानक जो शिल्प (तकनीक) के द्वारा लघुकथा में परिवर्तित होता है। इसलिए इसमें संपादन की गुंजाइश कम ही रहती है। इसे ध्यान में रखने से लघुव्यंग्य, बोधकथा, वार्तालाप,

चुटकुला आदि से स्पष्ट अंतर समझा जा सकता है।
कथानक का कोई उद्‌देश्य हो, इसलिए प्राय: सामाजिक उद्‌देश्य वाले कथानक का चुनाव करता हूं, जो आमतौर पर निम्न या मध्यम वर्ग से जुड़ा होता है।

**2. क्या कभी कोई कथानक किसी विचार या सूक्ति को पढ़ते हुए सूझा है?**
कहीं कोई विचार पढ़ते हुए लगता है कि इस विचार का वृहद सामाजिक उद्‌देश्य है, उस पर कथानक ढूंढ़ने का प्रयास करता

हूं। सूक्ति पढ़ते हुए कभी कोई कथानक सूझा, ऐसा तो ध्यान में नहीं आ रहा।

3. **कथानक सूझने के बाद, जाहिर है कि लघुकथा की एक अपुष्ट-सी रूपरेखा स्वत: बन जाती है। आप क्या उसे बाकायदा कहीं लिख लेते हैं या याद रखते हैं?**

यह परिस्थिति पर निर्भर करता है कि कथानक कहां, कब, कैसे सूझा। कथानक सूझते ही परिस्थिति अनुसार प्राय: मैं लघुकथा का प्रथम ड्राफ्ट, जिसको रफ कह सकते हैं, लिख लेता हूं। कथानक कहाँ से निकला, उसे ध्यान में रखकर शैली का

चुनाव कर लेता हूं। प्राय: मन में ही याद रखना नहीं चाहता, क्योंकि इससे भूलने की आशंका होती है और लिखते समय इसमें हटकर बदलाव भी हो सकता है।

**4. क्या कभी ऐसा भी हुआ कि कथानक सूझते ही लघुकथा का अंत सबसे पहले दिमाग में आया हो और आपने उसी के ईर्द-गिर्द लघुकथा बुनी हो?**

पहले-पहल जब कथानक सूझता है, तो उसमें अंत भी निकलता प्रतीत होता है। यह बात अलग है कि लघुकथा का पहला, दूसरा या अंतिम ड्राफ्ट तैयार होते-होते

उसमें अंतर आ जाए। खासतौर पर लघुकथा के फ्लो को अचानक मोड़ देने या समाप्त कर देने से ऐसा परिवर्तन संभव है। ऐसी लघुकथा जो अंत से शुरू होती है, कभी कभी उसी के इर्द-गिर्द लघुकथा बुनी जाती है और अंत नहीं बदलता- खासतौर पर फ्लैशबैक वाली लघुकथा में।

**5. कथानक चुनने के बाद आप यह निर्णय कैसे करते हैं कि उस पर लघुकथा किस शैली में लिखनी है?**

कथानक किस परिवेश से संबंधित है, पात्र कौन-कौन हैं, उसके अनुसार शैली का

चुनाव करता हूं। प्राय: वर्णनात्मक या सपाटबयानी वाली शैली से बचता हूं। वैसे, किसी भी शैली में व्यंग्य का पुट डालकर उसे रोचक और चुटीला बनाने का प्रयास करता हूं।

**6. लघुकथा का पहला ड्राफ्ट लिखकर आप कब तक यूं ही छोड़ देते हैं। आप सामान्यत: लघुकथा के कितने ड्राफ्ट लिखते हैं?**

सामयिक विषयों, ताजा घटनाक्रम पर आधारित कथानक के ड्राफ्टों की संख्या दो या तीन ही होती है। अन्य कथानकों के

लिए भी यह संख्या अधिकतम चार ही होती है। क्योंकि मैं मानता हूं कि किसी लघुकथा में पहली बार में ही मेहनत कर ली जाए, तो बाद में ज्यादा सुधार की जरूरत नहीं रह जाती।

पहला ड्राफ्ट तैयार करके ज्यादा से ज्यादा दो-तीन दिन तक यूं ही छोड़ देता हूं, उसके बाद दूसरा ड्राफ्ट, और जरूरत हो तो तीसरा ड्राफ्ट कुछ ही घंटों के अंतराल पर तैयार होता है।

**7. क्या कभी ऐसा भी हुआ कि कथानक सूझते ही तत्क्षण उस पर लघुकथा लिखी गई हो?**

पर्व विशेष या सामयिक विषय पर आधारित कथानक सूझते ही पहला ड्राफ्ट तुरंत कर लेता हूं। फिर कुछ अंतराल बाद दूसरा। ऐसे मामलों में कभी-कभी टाइप करते-करते भी कुछ परिवर्तन हो जाते हैं। अन्य मामलों में पहला ड्राफ्ट भले ही तुरंत तैयार हो जाए, पर अंतिम रूप लेने में समय लगता है, क्योंकि सामयिक विषयों

से हटकर कथानक का चुनाव एवं लेखन, दोनों ज्यादा समय की मांग करते हैं।

**8. लघुकथा लिखते हुए क्या आप शब्द सीमा का भी ध्यान रखते हैं?**

मैंने अभी तक छोटे-छोटे बिंदुओं पर ही लघुकथा लिखी है, क्योंकि मुझे लगता है कि किसी एक छोटे बिंदु पर लिखना इस 'कठिन विधा' का 'सरल तरीका' है। इसलिए मेरी लघुकथाएं चालीस से चार सौ शब्दों की सीमा में ही हैं। किसी भी लघुकथा को अनावश्यक विस्तार देना ही गलत है। पंचलाइन मेरी लघुकथाओं में

भले ही महत्वपूर्ण हो गया है, पर मैं इसे आवश्यक नहीं मानता। लघुकथाकार के पास शब्दों का भंडार होता है, पर वह लिखते वक्त कंजूसी की हद तक किफायती होता है, क्योंकि सटीक-सरल शब्दों की मांग लघुकथा लेखन में होती है। लघुकथा में कई बार लघुकथाकार बिना ज्यादा लिखे बहुत कुछ कह जाता है, जिसे पाठक आसानी से समझ जाता है। कभी-कभी लेखक, पाठक के लिए कुछ छोड़ देता है। इसलिए लघुकथाकार को

शब्द सीमा का ध्यान रखने की आवश्यकता ही नहीं होती।

**9. लघुकथा लिखते हुए आप किस पक्ष पर अधिक ध्यान देते हैं? शीर्षक पर, प्रारंभ पर, मध्य पर या फिर अंत पर?**

पाठक को सबसे पहले लघुकथा का शीर्षक ही आकर्षित करता है और अंत से वह प्रभावित होता है। पर कभी-कभी प्रारंभ पढ़कर ही वह लघुकथा को बीच में ही छोड़ देता है, इसलिए शीर्षक और अंत पर सबसे ज्यादा ध्यान देने के बाद बारी शुरुआत की आती है। प्राय: अंत से ही शीर्षक सार्थक

होता है। वैसे, शीर्षक, प्रारंभ, मध्य और अंत में तारतम्यता जरूरी है। लघुकथा का शीर्षक भी लघु अर्थात एक, दो या कभी-कभी तीन शब्दों का होना चाहिए। शब्द छोटे और सरल, पर भावों में भारी होने चाहिए।

यदि शीर्षक को सिर पर रखा रुमाल, टोपी, पगड़ी, साफा या फिर मुकुट मान लिया जाए, तो हम सिर को प्रारंभ, धड़ को मध्य और अंत को पैर जैसा महत्व दे सकते हैं। वैसे, आजकल समाज में सिर से ज्यादा महत्व पैर को देने का चलन बढ़ता जा रहा

है। फूल सिर या पैर पर ही रखे जाते हैं। जिस तरह से सिर के ऊपर रखी या पैर में पहनी गई चीज से व्यक्ति का मूल्यांकन होता है, कुछ वैसी ही बात लघुकथा की भी होती है। बहरहाल, मैं शीर्षक, प्रारंभ और अंत में संतुलन बनाकर चल रहा हूं।

**10. लघुकथा लिखते समय ऐसी कौन-सी ऐसी बातें हैं, जिनसे आप सचेत रूप से बचकर रहते हैं?**

लघुकथा के मानकों पर खरी रचना ही बने। लघु कहानी या लघु व्यंग्य का बोध न हो। भाषा सरल, शब्दों का चयन सटीक

हो। लघुकथा से उसके उद्देश्य की पूर्ति होती हो। लघुकथा में व्यंग्य का पुट तो हो, पर वह चुटकुला (हास्य) न लगे। लघुकथा या लघुकथाकार का उद्देश्य पूर्ण हो, सरलता से। लघुकथा की भाषा परिवेश और पात्र के अनुकूल हो। छत्तीसगढ़ का निम्न या मध्यमवर्ग का पात्र हिंदी भी बोलेगा, तो 'हां' के स्थान पर 'हव' ही कहेगा। शब्द का लेखन पात्र के उच्चारण के अनुसार ही हो।

**11. एक गम्भीर लघुकथाकार इस बात से भली-भांति परिचित होता है कि लघुकथा**

**में उसे 'क्या' कहना है, 'क्यों' कहना है और 'कैसे' कहना है, निस्संदेह आप भी इन बातों का ध्यान रखते होंगे। इसके अलावा आप 'कहां' कहना है (अर्थात किस समूह, गोष्ठी, पत्रिका, संकलन अथवा संग्रह के लिए लिख रहे हैं) को भी ध्यान में रखकर लिखते हैं?**

लघुकथा में 'क्या' कहना है और 'क्यों' कहना है, स्पष्ट होना चाहिए। यह 'कैसे' कहना है के तरीके (जिसमें शिल्प भी आता है), पर निर्भर करता है। किसी गुट या विचारधारा समूह में मैं शामिल नहीं हूं,

इसलिए ऐसा कुछ ध्यान में रखकर नहीं लिखता। स्वतंत्र रूप से लिखता हूं। हां, गोष्ठी, समूह में पठन के लिए उसी के अनुरूप रचनाएं छांटनी पड़ती हैं। पत्रिका या संकलन के लिए भी प्रकाशन संस्थान या संपादक की पसंद और विचारधारा को ध्यान में रखकर रचनाओं का चयन करता हूं।

**12. लघुकथा लिखते हुए क्या आप पात्रों के नामकरण पर भी ध्यान देते हैं? लघुकथा में पात्रों के नाम का क्या महत्व मानते हैं?**

हिंदी लघुकथा सामान्यत: हिंदीभाषी राज्यों की सामान्य या विशेष गतिविधियों पर ही आधारित होती है। लेकिन हर हिंदीभाषी प्रांत के स्थानीय पात्रों के नाम अलग होंगे, खासतौर पर ग्रामीण अंचल के। मसलन- दुकालू, डेरहा, बिसाहिन, दौआ, रमौतिन जैसे नाम छत्तीसगढ़ के ग्रामीण इलाकों में ही मिलेंगे। उच्च वर्ग के नामों में घालमेल हो सकता है। कथानक किस वर्ग, जाति, संप्रदाय, श्रेणी, व्यवसाय से संबंधित है, पात्र के नाम भी उसी के अनुरूप होंगे। रिक्शा खींचने वाले, कुली,

भीख मांगने वाले के नाम क्लिष्ट और साहित्यिक हो ही नहीं सकते। जिस तरह से भाषा, व्यवहार आदि से पात्र के बारे में पता चल सकता है, उसी प्रकार उसके नाम से भी काफी कुछ अंदाजा लगाया जा सकता है। इसलिए पात्रों के लिए नामों के चयन को भी महत्व दिया जाना चाहिए, इसका ध्यान रखता हूं।

**13. क्या लघुकथा लिखकर आप अपनी मित्र-मंडली में उस पर चर्चा भी करते हैं? क्या उस चर्चा से कुछ लाभ भी होता है?**

चर्चा का उद्देश्य ही लाभ से जुड़ा रहता है। खैरागढ़ नगर में मैं अकेला लघुकथाकार हूं। यहां के इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग को भी नगर की परिधि में शामिल कर लें, तब भी स्थिति जस की तस ही रहती है। नगर और विश्वविद्यालय में समीक्षक तो हैं, पर वे अपने को लघुकथा क्षेत्र का विशिष्ट जानकार नहीं मानते। इसलिए प्रवास पर ही किसी गोष्ठी या परिचर्चा में ही अपनी लघुकथा पर बात हो पाती है, जिससे कभी-कभी कुछ लाभ अवश्य मिलता है।

**14. क्या कभी ऐसा भी हुआ कि किसी लघुकथा को सम्पूर्ण करते हुए आपको महीनों लग गए हों? इस सम्बन्ध में कोई उदाहरण दे सकें तो बहुत अच्छा होगा।**

मेरी तो ऐसी कोई लघुकथा नहीं है, जो इतने लंबे समय तक लटकी रही हो। मेरा निजी मत है कि किसी लघुकथा को पूर्ण करने में महीनों का समय लगना भी नहीं चाहिए। वैसे, इतना लंबा समय लगने के पीछे कुछ और कारण हो सकते हैं, जो मुमकिन है कि लेखन से सीधे न जुड़ते हों। यह मेरी निजी राय है और मेरे मामले में

कभी ऐसा नहीं हुआ, पर हो सकता है कि औरों के अनुभव अलग हों।
मुझे लगता है कि लघुकथाकार की सोच आगे बढ़ने की होनी चाहिए। यानी अगर चार ड्राफ्ट में लघुकथा पूर्ण न हो पाए या संतुष्टि न मिले, तो उसे छोड़कर नई रचना की ओर बढ़ जाना चाहिए।

**15. आप अपनी लघुकथा का अंत किस प्रकार का पसंद करते हैं? सुझावात्मक, उपदेशात्मक या निदानात्मक?**
व्यक्ति जिस व्यवसाय कर्म से लंबे समय तक जुड़ा रहता है, उसमें उस व्यवसाय से

संबंधित गुण विकसित हो जाते हैं। मैं लंबे समय तक अध्यापन करता रहा, इसलिए मेरी आदत बन गई कि मैं अपनी राय थोपता नहीं, बल्कि सुझाव के रूप में पेश करता हूं। सामने वाला समाधान की आशा लेकर आता है, तब भी। समाधान की दिशा भले ही दिखा दूं। किसी खास विचारधारा वाली पत्रिका या अखबारी परिशिष्ट के लिए लिखी गई रचनाओं को छोड़कर, मेरी रचनाओं में अंत सुझावात्मक ही होता है।

**16. आप किस वर्ग को ध्यान में रखकर लघुकथा लिखते हैं, यानी आपका 'टारगेट ऑडियंस' कौन होता है?**

मेरा कोई 'टारगेट ऑडियंस' नहीं है, क्योंकि मैं न तो किसी विचारधारा का पूर्ण समर्थक हूं, न ही किसी गुट विशेष या आंदोलन से पूर्णत: जुड़ा हूं। मैं लघुकथा के पाठकों में महिला-पुरुष, युवा-वृद्ध, अमीर-मध्यम वर्गीय, शहरी-ग्रामीण, नौकरीपेशा, छात्र, व्यवसायी जैसे भेद भी नहीं देखता। मेरी रचनाओं के कथानक अधिकांशत: निम्न और मध्यम वर्ग से

संबंधित होते हैं, जिनका पाठक कोई भी हो सकता है।

**17. अपनी लघुकथा पर पाठकों और समीक्षकों की राय को आप कैसे लेते हैं? क्या उनके सुझाव पर आप अपनी रचना में बदलाव भी कर देते हैं?**

अंतिम ड्राफ्ट पूरा होने के बाद परिवार के सदस्यों को सुनाता हूं और कोई सुझाव मिलने पर उस ओर ध्यान जरूर देता हूं। मेरी किसी खास लघुकथा पर तो नहीं, लेकिन संग्रह 'गुरु-ज्ञान; आईना दिखातीं लघुकथाएं' की कुछ रचनाओं पर श्री

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' और डॉ. गोरेलाल चंदेल जैसे समीक्षकों ने टिप्पणियां अवश्य की हैं। डॉ. रमाकांत श्रीवास्तव, डॉ. वीरेंद्र मोहन ने भी समीक्षक दृष्टि से उन्हें परखा है।

**18. क्या कभी ऐसा भी हुआ कि आपने कोई लघुकथा लिखी, लेकिन बाद में पता चला कि वह किसी अन्य लघुकथा से मिलती-जुलती है। ऐसी स्थिति में आप क्या करते हैं?**

लघुकथाओं के कुछ विषय और भाव इतने आम हैं और इतनी अधिक लघुकथाएं

लिखी जा रही हैं कि सिर्फ मेरी ही नहीं, पढ़ते हुए कई अन्य लघुकथाएं भी मिलती-जुलती लगती हैं। अपनी रचनाओं के बारे में कभी ऐसा दिखता है या आभास भी होता है, तो मैं बदलाव की कोशिश करके देखता हूं और न होने पर अपनी रचना को निरस्त करने से भी नहीं हिचकता।

**19. क्या कभी आपने अपनी लिखी लघुकथा को खुद भी निरस्त किया है? यदि हां, तो इसका क्या कारण था?**

हां, निरस्त तो किया है, पर ऐसी स्थिति कभी-कभार ही बनती है। इसका मुख्य कारण रचना से खुद ही संतुष्ट न हो पाना है। कभी कोई कथानक विचार रूप में तो बहुत बढ़िया लगता है, पर कागज पर साकार होने के बाद उतना प्रभावी महसूस नहीं होता। लगता है कि लघुकथा का स्तर पर्याप्त नहीं है, तो मोह त्यागकर उसे निरस्त ही कर देता हूं। जैसा कि मैंने पिछले प्रश्न में बताया, किसी अन्य लघुकथा से साम्य का पता चलने पर भी उसे नष्ट कर देता हूं। कभी-कभार ऐसा भी

होता है कि एकाधिक जगहों पर भेजे जाने के बाद भी लघुकथा नहीं छपती, तो स्वत: ही ठंडे बस्ते में चली जाती है।

**20. लघुकथा पूर्ण हो जाने के बाद आप कैसा महसूस करते हैं?**

लघुकथा के पूर्ण होने पर हर बार एक-सा ही लगे, यह जरूरी नहीं है। रचना पूरी करने का तनाव हो, तो पूर्णता के बाद सुकून महसूस होता है। लघुकथा उम्मीद से ज्यादा अच्छी बन जाती है, तो बेशक खुशी होती है। कभी-कभी इसका उल्टा भी होता है। हाँ, यह जरूर है कि मांग के

अनुसार समयावधि में लघुकथा पूर्ण हो जाने पर दूसरी लघुकथा लिखने के लिए उत्साह मिलता है।

**प्रिय पाठक,**

आपने यह लघुकथा संग्रह पढ़ा, आपको धन्यवाद। आशा है, पसंद आया होगा। कृपया अपनी राय से मुझे भी अवगत कराएं। ggbalkrishna@gmail.com पर आप अपनी समीक्षात्मक टिप्पणी, आलोचना, सुझाव व अन्य प्रतिक्रियाएं नि:संकोच भेज सकते हैं। आप मुझसे फेसबुक पर भी संपर्क कर सकते हैं। आपके पत्र का इंतजार रहेगा।

**- बालकृष्ण गुप्ता 'गुरु'**